

पूर्वोत्तर भारत और सिख गुरुओं का इतिहास

डॉ. आलोक सिंह

प्रकृति की रमणीय गोद में बसा पूर्वोत्तर विशाल भारतवर्ष का एक अभिन्न अंग है, जो असम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मणिपुर, मिजोरम, नागालैंड, त्रिपुरा और सिक्किम इन आठ प्रदेशों का समुच्चय है। नाना जाति-उपजातियों की मिलन-भूमि कहलाने वाला यह पूर्वोत्तर भारतवर्ष के मूल भू-भाग से दूर पर स्थित होते हुए भी प्राचीनकाल से ही सांस्कृतिक दृष्टि से सम्बद्ध रहा है। पुण्यभूमि भारतवर्ष की मूल सार्वभौमिक संस्कृति की अविरल धारा के प्रवाह से यह पूर्वोत्तर सदा प्रेरित प्रभावित रहा है। 'सात बहनें और एक भाई' के रूप में प्रसिद्ध इस पूर्वोत्तर भारत के उक्त आठों प्रान्तों के निराले एवं वैचित्रपूर्ण समुच्चय में सभी प्रदेशों का अपना प्रमुख एवं विशिष्ट स्थान है। यहाँ के समाज में व्याप्त लोक गीत, लोक कथा, लोकनीति, लोकविश्वास इस समाज को नया आकाश प्रदान करते हैं च इसकी यही विशेषता हर किसी को अपनी ओर आकर्षित करती है। इस भूखंड को अगर हम पौराणिक दृष्टि से देखें तो महाभारत काल से ही इसका सांस्कृतिक ऐतिहासिक संबंध रहा है। हम देखते हैं कि महाभारत काल से ही भगवान कृष्ण, अर्जुन, भीम का पूर्वोत्तर के साथ एक पारिवारिक नाता भी रहा है। श्री कृष्ण का अरुणाचल प्रदेश के साथ, अर्जुन का मणिपुर के साथ और भीम का नागालैंड के साथ। भारतवर्ष के विशाल फलक पर लगभग तेरहवीं शती से सत्रहवीं शती तक परिव्याप्त अखिल भारतीय भक्ति आन्दोलन मध्यकालीन धर्म-अध्यात्म-साधना के इतिहास की अन्यतम उल्लेखनीय घटना है। साम्य, मैत्री, दया, करुणा, प्रेम, अहिंसा, सह-अस्तित्व, विश्वात्मबोध एवं लोक तांत्रिक मूल्यों पर आधारित इस उदात्त भक्ति-आन्दोलन की प्रबल धारा से पूर्वोत्तर भारतकी भूमि भी आलोकित एवं आन्दोलित हुई। जिसके कर्णधारों में विष्णु-भक्त महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव (ई. 1449-ई. 1568) का नाम बड़े आदर एवं सम्मान के साथ लिया जाता है। उन्होंने सर्वग्राहिणी भारतीय संस्कृति के मुखपत्र सदृश 'श्रीमद्भागवत् पुराण' और 'श्रीमद्भगवत् गीता' के आधार पर 'एकशरण भागवती वैष्णव धर्म' ('एकशरण नाम धर्म' या 'महापुरुषीया धर्म') का प्रवर्तन कर सार्वभौमिक भ्रातृत्वबोध एवं मानवतावाद के सर्वत्र प्रचार-प्रसार के द्वारा असमीया समाज-जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन लाने का सराहनीय प्रयास किया। उनके द्वारा प्रवर्तित इसी नव-वैष्णव आन्दोलन के व्यापक परिदृश्य में 'नामघर' एवं 'नामघरीया संस्कृति' समाविष्ट हैं। 15वीं-16वीं शती में प्रवाहित होने वाली सत्रीया एवं नामघरीया संस्कृति की वेगवती धारा ने मध्यकालीन असम-भूमि में सांस्कृतिक नवोत्थान का एक ऐसा ज्वार उठाया जिसकी लहरें वर्तमान समय तक विद्यमान हैं। इस नामघरीया संस्कृति ने न केवल धार्मिक-आध्यात्मिक क्षेत्र में सर्वसाधारण असमीया जनता को आलोकित किया, वरन् सामाजिक सांस्कृतिक दिशा में भी अपना विशिष्ट योगदान दिया। कुल मिलाकर पूर्वोत्तर भारत अपनी सामाजिक सांस्कृतिक राजनीतिक धार्मिक भौगोलिक और ऐतिहासिक महत्त्व के कारण हमारे देश में एक विशिष्ट स्थान रखता है। यहाँ के सभी राज्यों में कमोबेश सभी धर्मावलंबी के लोग रहते हैं और सभी का अपना ऐतिहासिक और पौराणिक इतिहास भी है।

पूर्वोत्तर भारत में सिख धर्म एवं सिख गुरुओं के इतिहास पर प्रकाश डालें तो असम राज्य के साथ सिख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक देव और सिख धर्म के नवें गुरु, गुरु तेगबहादुर का ऐतिहासिक संबंध रहा है। ऐतिहासिक विवरणों से ज्ञात होता है कि सिख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक देव अपने विश्व भ्रमण के दौरान बांग्लादेश के ढाका से होते हुए असम के धुबड़ी जिले में स्थित गुरुद्वारा दमदमा साहिब स्थल पर आकर ठहरे थे। इसी दौरान सन् 1505 ई। में उनकी भेंट श्रीमंत शंकरदेव से भी हुई थी और उस समय गुरु नानक देव की उम्र 36 वर्ष तथा शंकरदेव की 56 वर्ष थी। गुरु नानक देव और श्रीमंत शंकरदेव के विचार स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए सूर्यकुमार भुइआ अपनी पुस्तक 'बैकगाउंड ऑफ असमीज कल्चर' में लिखते हैं कि "दोनों महापुरुषों में गहनचिंतन-मनन हुआ कि असम में प्रचलित तंत्र-मंत्र और शाक्तधर्म के कुप्रभाव से स्थानीय लोगों का उद्धार कर उन्हें किस तरह संस्कारित किया जाए? जनता को किस प्रकार जादू-मंत्र के अभिशाप से मुक्त करा भगवद्भक्ति में लगाया जाए-आदि।"

इसके बाद कहा जाता है कि गुरु नानक देव असम के धुबड़ी से रंगामाटी, जोगीगोफा, ग्वालपाड़ा, कामाख्या हाजो, सदिया, अरुणाचल प्रदेश के परशुराम कुंड से होते हुए तिब्बत चले गए। वहाँ से चीन, जापान, फिलीपींस, जावा, सुमात्रा और वर्मा की यात्रा करते हुए मणिपुर की राजधानी इंफाल के रास्ते पुनः भारत लौटे। सिख धर्म के नवेंगुरु, गुरु तेगबहादुर जब असम के धुबड़ी में आते हैं तो वे वहाँ पर एक गुरुद्वारे का निर्माण करवाते हैं। नवम सिख गुरु तेगबहादुर के असम आने के बारे में वर्णन मिलता है कि अहोम राजा चक्रध्वज सिंह के मुगल विद्रोह को नष्ट करने के लिए मुगल सेनापति राम सिंह को औरंगजेबअसम जाने हेतु प्रतिनियुक्त करता है। राम सिंह अपनी इस यात्रा में अपने साथ गुरु तेगबहादुर को भी असम आने के लिए अनुरोध करते हैं और गुरु तेगबहादुर इस अनुरोध को स्वीकार भी कर लेते हैं। इस संबंध में सांवरमल सांगानेरिया अपने यात्रा वृत्तांत 'ब्रह्मपुत्र के किनारे किनारे' में लिखते हैं कि "असम आते समय शुरु से ही राम सिंह यहाँ के जादू-टोने से भयभीत था, इसलिए उसने सर्वप्रथम नवम सिख गुरु तेगबहादुर से मिलकर उन्हें अपनी सेना के साथ असम आने के लिए राजी किया था। राम सिंह के नेतृत्व में मुगल सेना ने धुबड़ी से 24 कि. मी. दूर रंगा माटी में अपनी छावनी बनाई। गुरु तेगबहादुर जब धुबड़ी आए, तब स्वयं यहीं दमदमा साहब में रुके, जहाँ गुरु नानक देव ने विश्राम लिया था।"

फरवरी 1669 ई. के शुरुआती माह में कामरूप पहुँचने पर गुरु तेगबहादुर ने धुबड़ी में अपना डेरा डाला जबकि मुगल सेनापति राम सिंह और उनकी सेना ने रंगमती किले में डेरा डाला। हालांकि मुगल सेना आश्वस्त थी लेकिन यह सुनिश्चित नहीं थी कि उनके साथ गुरु तेगबहादुर असमियों के जादू और टोने के बुरे प्रभाव को नष्ट करने में सक्षम होंगे या नहीं। असम के जादू टोने के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए सांवरमल सांगानेरिया लिखते हैं कि " मुगल आक्रमणकारियों को पराभूत करने के लिए अहोम राजा चक्रध्वज सिंह ने अपने राज्य की जादू विद्या में पारंगत महिलाओं को भी तैनात कर रखा था। उनमें से एक नेताई धुबिनी की वंशधर थी। वह समझ गयी कि उसके जादू को निष्क्रिय करने का सामर्थ्य केवल गुरु तेगबहादुर में ही है। इसलिए उसने उन पर तरह-तरह से अपनी विद्या का प्रयोग किया। सब वार

निष्फल चले गए तो उसने क्रोधित होकर गुरुदेव को मारने के लिए 26 फुट लंबी एक बड़ी शिला की मूठ चलाई, जो गुरु की आध्यात्मिक शक्ति के प्रभाव से दो टुकड़े होकर जमीन में धंस गई। इस बार उसने एक बड़े पीपल के पेड़ मूठ को धोबिन गुरु जी पर छोड़ा, जो आज भी गुरुद्वारे में भक्ति टीला पर जस का तस खड़ा है। धोबिन ने और भी तरह-तरह से अपने काले जादू को उन पर प्रयोग किए परंतु उसके सभी वार बेकार गये। आखिर हारकर वह गुरु की शरण में आयी। उनके पांवों पर गिरकर उसने क्षमा मांगी और उनसे आशीर्वाद मांगा कि वे ऐसा वर दें. जिससे उसका नाम सदा के लिए अमर हो जाए। गुरुजी ने भविष्य में अपनी काली विद्या का प्रयोग न करने का उससे वचन लेकर कहा कि यह जगह आगे से उसके नाम से जानी जाएगी।"

गुरु तेगबहादुर ने जादू विद्या में पारंगत महिलाओं को आश्वासन दिया कि वह राजा राम सिंह और अहोम राजा के बीच शांति लाने के लिए कार्य करेंगे, जिसके लिए उन्हें दोनों पक्षों का हृदय परिवर्तन करना आवश्यक था। नतीजतन, उन्होंने राम सिंह को शांतिपूर्ण बातचीत के माध्यम से अपने शासन के उद्देश्यों को प्राप्त करने की सलाह दी और कहा कि जब तक जादू विद्या में पारंगत महिलाएँ उन पर हमला न करें तब तक वह भी हमला नहीं करेंगे। बाकी कहानी इतिहास का एक हिस्सा है कि कैसे वह मुगल सेनापति राम सिंह और असम के अहोम राजा के बीच मतभेदों को दूर करने में सफल रहे। इस कार्य के लिए कृतज्ञ अहोम राजा ने गुरु तेगबहादुर को कामाख्या मंदिर में आमंत्रित किया जहाँ उनका बहुत सम्मान किया गया।

गुरु तेगबहादुर के प्रयासों से लाए गए शांति समझौते की खुशी का अवसर मुगल और अहोम सेनाओं द्वारा गुरु नानक की दरगाह पर संयुक्त श्रद्धांजलि के रूप में मनाया गया। कहा जाता है कि धुबड़ी की शांति का टीला दोनों सेना के सैनिकों द्वारा अपनी ढालोंपर रखी लाल मिट्टी के साथ खड़ा किया गया था। गुरु तेगबहादुर के सफल शांति प्रयासों का यह स्थाई स्मारक आज भी धुबड़ी में स्थित है। इस संदर्भ पर अपने विचार रखते हुए 'ब्रह्मपुत्र के किनारे किनारे' अपने यात्रा वृत्तांत में सांवरमल सांगानेरिया लिखते हैं कि "घटना जिस रूप में भी हुई होगी किंतु इस गुरुद्वारे में एक घरे में रखी एक विशाल लंबी शिला के बारे में मान्यता है कि यह वही शिला है जिसे धुबिनी ने मूठ के रूप में गुरु तेगबहादुर पर चलाया था। दमदमा साहब गुरुद्वारा आज भव्य रूप में खड़ा है। शुरुआत में यह माटी का एक टीला मात्र था। उस टीले को गुरु तेगबहादुर और उनके साथ आए सिख सैनिकों ने माटी लाकर बनाया था। इसी स्थान पर गुरु तेगबहादुर को पटना से अपने पुत्र गोविंदसिंह के जन्म का शुभ समाचार प्राप्त हुआ था। इसी स्थान पर गुरुदेव ने त्रिपुरा के राजा रामराय को पुत्र-प्राप्ति का वरदान दिया और कहा कि होने वाले उस पुत्र के मस्तक पर उनकी अंगूठी के निशान की तरह का चिन्ह होगा।"

इन सबके अतिरिक्त यह उल्लेख मिलता है कि गुरु तेगबहादुर के साथ आए सैनिकों में से कुछ यहीं रुक गए थे, जिनके वंशज आज भी धुबड़ी में रहते हैं। दमदमा साहब को आज धुबड़ी साहब भी कहा जाता है। इसी गुरुद्वारे में पूर्वोत्तर में पहली बार सिख धर्म के रीति-रिवाज के अनुसार निशान साहब फहराया गया

था। यहाँ से मानव कल्याण के अनेक कार्य भी चलते हैं। आज यहाँ देश के हर कोने से सिख मत्था टेकने आते हैं।

असम में सिख समुदाय के विकास यात्रा के संदर्भों के बारे में कई असमिया साहित्यकारों के साहित्य से भी जानकारी मिलती है। इनमें लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ का उपन्यास पोदुमकुँवारी (1890). जोनाकीदाईबचंद्र तालुकदार का नाटक हरदत्त (1935) और रजनीकांत बरदलोई का उपन्यास मनोमती (1900) एवं दंडुआ द्रोह (1919) आदि हैं। कुल मिलाकर पूर्वोत्तर भारत के साथ सिख समुदाय का एक पुराना नाता रहा है। पूर्वोत्तर भारत के आठों राज्यों असम, मेघालय, नागालैंड, मणिपुर, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम और सिक्किम राज्यों में पवित्र स्थल गुरुद्वारा आपको देखने को मिलेगा।

(मेघालय राज्य की राजधानी शिलांग में स्थिति गुरुद्वारा) जो समय-समय पर जरूरतमंदों को लंगर के माध्यम से तथा अन्य जरूरी सेवाओं के द्वारा एक दूसरे की सहायता करते रहते हैं। इसके साथ-साथ आठों राज्यों में व्यवसाय क्षेत्र में भी सिख समुदाय के लोग अपनी सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं।

संदर्भ ग्रन्थ-

1. ब्रह्मपुत्र के किनारे किनारे, सांवरमल सांगनेरिया, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ-322
- 2 वही, पृष्ठ-322
3. वही, पृष्ठ-322-323
4. वही, पृष्ठ-323